Dr. Justice Shivraj V. Patil

Member
NATIONAL HUMAN RIGHTS COMMISSION
Former Judge
Supreme Court of India

19 July, 2006

Forward

Human Rights can be generally understood as those rights which are inherent in human-beings without which they cannot be as human-beings. Twenty country is considered as the century for 'Democracy and Human Rights'.

Human Rights demand treating others as we expect others to treat us. They are natural rights come by birth as human beings. No effort needs be made to acquire them.

The Universal Declaration of Human Rights, 1948, declared "all human beings are born fee and equal in rights and dignity". Human rights broadly constitute and cartograms of rights of rights (i) rights which are essential two cartograms of rights, (i) rights which the essential for the dignified human existence viz, the right to have basic human needs like food, clothing, shelter and medical care, and (ii) rights which are essential for the adequate development of human personally such as the right to education, to rights to freedom of culture, the right to freedom of speech and expression, and the right to free movement.

Basically human rights are integral part of human life and it is the possession of these rights that distinguish human beings from other species. At all times and in all ages, right from the beginning there was oppression of human beings by human beings leading to struggles and revolutions for restoration and protection of human rights. In history and ancient scriptures, references to the basic human rights can be easily noticed. The Rigveda, one of oldest documents of human civilization declares that all human beings are equal and they are all brothers. The Atharvaveda proclaims that all human beings have equal right over food and water. The Vedas were the primordial source of 'Dharma', a compendious term for all human rights and duties. The observance of 'Dharma' was regarded as

essential for securing peace and happiness to individuals as well as society. All such works were intended for securing happiness to all. *"Sarve Jana Sukhino Bhavanthee"* was the ethos of our motherland.

No religion teaches anything bad to its followers because the quintessence of all the religions world-over is love, truth, non-violence, righteousness and peace. But strangely and unfortunately practically no country in the world is free from bloodshed in the name of religion or God. Religions of the world are like the beautiful flowers of a garden. Flowers grow in their own natural beauty depending on the soil and weather where they are planted; the religions too spring up from the visions and experiences of the exalted souls of that soil trying to bring people together on the firm foundations of humanity. Each flower has got its own beauty and distinct charm making the whole garden colourful and beautiful.

The contribution of 'Jain Dharma' in promoting and protecting Human Rights was great judged by the quintessence of religions as stated above. Creating awareness of Human Rights among the people generally and particularly among the vulnerable sections is essential and appropriate. Promotion and protection of Human Rights depend upon creating awareness of Human Rights among the people and the sensitivity of all the concerned towards Human Rights. Rajasthan State Human Rights Commission has taken good decision to publish small booklets touching different aspects of Human Rights relating to various sections of the people, that too in a simple language understandable to common man. Mr. Justice N.K. Jain, Chairperson of the Rajasthan State Human Rights Commission has taken pains to bring the booklets on topics like *'Human Rights', 'HIV/AIDS & Human Rights', 'बालकों के अधिकार' And 'मानवाधिकार और जैन धर्म'* / The work of the Commission deserves all appreciation & encouragement.

I hope the people will be benefited by reading these booklets and they will also serve the cause of spreading awareness of Human Rights among the people. I wish many more booklets of the type come out in future to serve the cause of Human Rights purposefully and meaningfully.

(Shivraj V. Patil)

मानवाधिकार और जैन धर्म

न्यायमूर्ति नगेन्द्र जैन*

प्रभु की असीम अनुकंपा से मैंने जैन धर्म को मानने व पालन करने वाले परिवार में जन्म लिया। जैनधर्म दर्शन व शास्त्रों के संबंध में फिर भी मैं अधिक ज्ञान अर्जित नहीं कर पाया, क्योंकि जैन धर्म-दर्शन के शास्त्र मूल में प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश भाषाओं में निबद्ध है। केवल मूल सिद्धान्त 'अहिंसा परमो धर्म', 'जीओ और जीने दो' व अपने कर्तव्य निर्वहन के बारे में ही जान पाया, जो सभी धर्मों में भी विद्यमान है।

अब राज्य मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष बनने के बाद जब मानव अधिकारों के बारे में विस्तार से जानने की कोशिश की तो यह पाया कि जो आज मानव अधिकार हैं वे जैन दर्शन में हजारों साल पहले से ही प्रतिपादित थे, जिनका जैन साहित्य में स्पष्ट वर्णन मिलता है। हमारे घरों में प्रचलित छोटी-छोटी कहानियों, व्रत व लोक कथाओं आदि के रूप में दादी-नानी से सुना। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए जैन धर्म में मानव अधिकारों के बारे में यह लेख एक लघु विनम्र प्रयास है।

मानवाधिकार : इतिहास के परिप्रेक्ष्य में : 19वीं शताब्दी में आर्थिक विकास से मानवता असुरक्षित हो गई। अर्थशास्त्रका विकास मानवमूल्यों का हनन करने लगा। मशीनों का प्रादुर्भाव होने लगा तथा मात्र बटन दबाने से ही काम होने लगा। इसके फलस्वरूप पुरुष-बल की आवश्यकता न रही तथा स्त्रियों व बच्चों का शोषण होने लगा। 20वीं शताब्दी में दो विश्व युद्ध सन् 1914-1918 तक व 1939-1945 तक देखे। संसारके बाजार में आयुधों की मांग बढ़ी तो पूर्ति हेतु अनेक राष्ट्र बहती गंगामें हाथ धोने लगे। एक ओर तो युद्ध की विभीषिका और दूसरी ओर कट्टर धार्मिक मान्यता तथा तीसरी ओर आर्थिक विकास बनाम मानवता का हनन। इस तीसरी मार से सभ्यता एवं संस्कृति के मूल मानवतावाद का ह्रास हो रहा था। ऐसे समय में प्रजातन्त्र की भावना का उदय हुआ। जनता की, जनता के लिए व जनता द्वारा सरकार की धारा चल पड़ी।

एक के बाद एक राष्ट्र स्वतन्त्र होते गये। पहले शासन या तो धर्म से अथवा शासक द्वारा अधिशासित होते थे किन्तु अब प्रजातन्त्र में शासन तन्त्र संविधान द्वारा संचालित होने लगे।

मानव अधिकारों के बारे में व्यवस्थित रूप से सोचने और उन्हें संगठित रूप देने का पहला अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास 25 सितम्बर 1926 को दासता के विरुद्ध हुए विश्व सम्मेलन के रूप में सामने आया। लगभग 4 वर्ष बाद 23 जून 1930 को बलात् श्रमपर सम्मेलन हुआ। 18 साल के लम्बे अन्तराल के बाद मानव अधिकारों की पहली सुव्यवस्थित घोषणा 10 दिसम्बर 1948 को सामने आयी। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा की गई यह घोषणा **मानव अधिकारों की विश्व घोषणा** कहलाती है। इसीलिए **10 दिसम्बर को पूरी दुनिया में मानवाधिकार दिवस** मनाया जाता है।

मानव अधिकार क्या हैं ? : प्रत्येक व्यक्ति को समानता, स्वतंत्रता एवं गरिमापूर्ण तरीके से जीने का अधिकार है, जो भारतीय संविधान के भाग तीन में मूलभूत अधिकारों में वर्णित हैं। न्यायालय भी उनको मान्यता देता है। इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा भी स्वीकार किये गये हैं।

इन अधिकारों में प्रदूषण मुक्त वातावरण में जीने का अधिकार, चिकित्सा सुविधा का अधिकार, अभिरक्षा में यातनापूर्ण और अपमानजनक व्यवहार न होने संबंधी अधिकार, महिलाओं के साथ सम्मानजनक व्यवहार का अधिकार, स्त्री, पुरुष, बच्चे व वृद्ध लोगों के समान अधिकार आदि शामिल हैं। इन अधिकारों का हनन जाति, धर्म, भाषा, लिंग भेद के आधार पर नहीं किया जा सकता। ये सभी अधिकार जन्मजात अधिकार हैं। इसके अलावा 14 साल की उम्र तक के प्रत्येक बच्चे को शिक्षा प्राप्ति एवं अपना समुचित विकास करने हेतु उपयुक्त अवसर पाने के अधिकार प्राप्त हैं व उनके हनन का मामला राज्य मानवाधिकार के कार्यक्षेत्र में आता है।

कल्याणकारी राज्य में सरकार का दायित्व बनता है कि मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिये प्रत्येक व्यक्ति के प्रति जवाबदारी हो। सुशासन वह महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, जो मानव अधिकारों की रक्षा को प्रभावी तौर पर सुनिश्चित करता है। बेहतर समाज के लिये जरूरी है, मानव अधिकारों का संरक्षण हो।

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 2(घ) के अनुसार ''मानव अधिकारों'' से तात्पर्य संविधान द्वारा प्रत्याभूत अथवा अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में अन्तर्निहित उन अधिकारों से है, जो जीवन, स्वतंत्रता, समानता एवं प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा से संबंधित तथा भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं। अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा से आशय संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा द्वारा 16 दिसम्बर 1966 को अभिस्वीकृत, अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार प्रसंविदा तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार प्रसंविदा से है।

यूरोप, अमेरिका आदि महाद्वीपों में पुनर्जागरण की जो लहर आई उसने जनतंत्र का प्रचार तथा प्रसार किया तथा इस भावना का विकास किया कि मानव जन्म से स्वतन्त्र पैदा हुआ है तथा प्रत्येक मानव को दूसरे के समान ही सम्मान तथा स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त नस्ल, लिंग, भाषा, धर्म, राष्ट्रीय या सामाजिक उद्गम स्थान, विचारधारा, जन्म आदि से सम्बन्धित विचारधारा के बिना सभी प्रकार के अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं का वह अधिकारी है। यह अवधारणा सत्ता के स्वेच्छाचारी इस्तेमाल को रोकने के उपकरण के रूप में विकसित हुई है।

मानव अधिकारों का जन्म पृथ्वी पर मनुष्य के विकास के साथ ही हुआ, क्योंकि इन अधिकारों के बिना वह न तो गरिमा के साथ जीवन यापन कर सकता था तथा न ही सभ्यता व संस्कृति का विकास कर सकता था। इसके साथ ही मानव अधिकारोंके दमनका सिलसिला शुरू हो गया क्योंकि शक्तिशाली व्यक्ति तथा समूह दूसरों का शोषण करके ही अपना वर्चस्व बनाये रख सकते थे। लेकिन 20वीं शताब्दी के द्वितीय शतक तक कमजोर वर्ग या कहना चाहिये शोषित वर्ग अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गया।

25 सितम्बर 1926 के पूर्व मानव अधिकारों का मामला मुख्यत: राष्ट्रीय रहा, लेकिन उसके बाद वह अन्तर्राष्ट्रीय विषय हो गया तब से मानव अधिकारों को समझने तथा उनके प्रति विश्व प्रतिबद्धता की घोषणा करनेका सिलसिला आज तक जारी है।

मानव अधिकारों में मुख्य रूपसे जीने का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, आस्था एवं अभिव्यक्ति का अधिकार, संगठन का अधिकार, संपत्ति का अधिकार, सामाजिक तथा आर्थिक अधिकार के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। लगभग सभी देशों के संविधान में उक्त प्रकार के अधिकार निर्धारित किए गए हैं। वर्तमान में किसी भी देश के सभ्य और सुसंस्कृत होने की कसौटी यह नहीं रही कि वह कितना अमीर या बलशाली है अपितु कसौटी यह है कि वह मानव अधिकारों का कितना सम्मान करता है।

भारतीय संविधान तथा मानवाधिकार : विकसित प्रजातान्त्रिक युग में भारत 15 अगस्त 1947 को स्वतन्त्र हुआ और 26 जनवरी 1950 को उसका अपना संविधान लागू हुआ। भारत के संविधान के पारित होने के समय मानवाधिकार की बात न केवल चर्चा में आ चुकी थी वरन् संसार में मानवाधिकार को लेकर आन्दोलनात्मक हलचल प्रारम्भ हो गई थी। भारतीय संविधान में भी यहाँ के नागरिकों को प्राप्त मूल अधिकारों में उन्हें शामिल किया गया है तथा इन अधिकारों के उल्लंघन पर व्यक्ति अपने देश

के न्यायालय में गुहार कर सकता है। मौलिक अधिकार तथा मानवाधिकार में केवल इतना ही अन्तर है कि भारत का संविधान भारत के नागरिक को मानवतावादी सुरक्षा प्रदान करता है। यदि हम यह कहें कि भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों की सुरक्षा एवं प्रक्रिया को आयाम देने के लिए मानवाधिकार का वर्तमान स्वरूप निर्धारित हुआ है तो अतिशयोक्ति न होगी। भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों के अलावा नीति निर्देशक तत्त्वों के अन्तर्गत सभी मनुष्यों को लिंग, जाति, धर्म आदि के किसी भी भेदभाव के बिना सम्मानपूर्वक जीवन-यापन करने के लिए, आवश्यक सुविधाएँ जुटाने का प्रयत्न करने के लिए केन्द्र व राज्य सरकारों को सुझाव दिया गया है। भारत में मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 बनाया गया। इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना की गई। प्रदेश स्तर पर भी ऐसे अनेक आयोग गठित किए गए हैं। अधिनियम 1993 की धारा 21(1) में प्रदत्त शक्तियों के अनुशरण में राजस्थान राज्य के लिए भी 18 जनवरी 1999 को राजस्थान राज्य मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया है, जिसके अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति मार्च, 2000 में की गई। इसका पुनर्गठन 6-7-2005 को हुआ। भारत में अन्य 14 राज्यों में मानवाधिकार आयोग कार्यरत है। इसके अलावा अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति तथा जन जाति आयोग, पिछड़ा वर्ग विकास आयोग एवं राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना भी मूलत: मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए व राजस्थान में राज्य महिला आयोग भी कार्य कर रही हैं।

मानवाधिकार तथा जैन धर्म : आत्मा के परम पुरुषार्थ का पोषक, मानवीय जीवन-मूल्यों का प्रतिष्ठापक जैन-धर्म एक लोक मंगल विधायक प्राचीन धर्म है। जैन धर्म जिनेन्द्रों द्वारा प्रतिपादित अनादि निधन धर्म है। यह किसी जाति विशेष अथवा अन्य धर्म की शाखा रूप नहीं है। यह तो पूर्णतया स्वतन्त्र धर्म दर्शन है। वीतराग सर्वज्ञ प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव व फिर भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि में जो सत् तत्त्व और वास्तविक वस्तु का स्वरूप प्रवाहित हुआ उसे आचार्य भगवंतो ने श्रुत परम्परा एवं स्वयं के अनुभव द्वारा ग्रन्थारूढ़ किया।

अहिंसा प्रधान जैन धर्म में प्रतिपादित जीवन शैली हिंसादि पाँच पापों के नियन्त्रण की शैली है। हिंसादि पंच पापों के विपर्याय में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पांच व्रत कहे गये हैं। इन पाँचों व्रतों का पूर्णतया पालन श्रमण तथा एकदेश पालन श्रावक जन करते हैं। आत्मसाधना की भावना से धर्माचरण में तत्पर साधु व गृहस्थ जन की जीवनचर्या ही प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप में प्रकृति से सम्पर्क कर पर्यावरण सन्तुलन तथा मानव के अधिकारों के संरक्षण तथा संवर्धन की पर्याय बन जाती है।

जैन धर्म न केवल मानव धर्म अपितु प्राणी धर्म की बात भी करता है। जैन धर्म का सिद्धान्त है कि प्रत्येक प्राणी में आत्म तत्त्व है, फिर चाहे वह हाथी हो या चींटी। प्रत्येक आत्मा को अपनी इच्छानुसार रहने तथा जीने का अधिकार है। मनुष्य न केवल स्वतंत्र एवं अन्य के समान है बल्कि उसे शोषण-मुक्त स्थितियों में जीने का भी अधिकार है जहाँ वह वैसा बन सके, जैसा बनने की उसमें क्षमताएँ हैं। वह विवेक एवं तार्किकता से सम्पन्न है, इसलिए उसे एक-दूसरे के साथ बराबरी और भाईचारे के व्यवहार के साथ रहना चाहिए। अत: जैन धर्म को प्राणी धर्म या मानव धर्म कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

जहाँ जैन धर्म व दर्शन चिरकाल से ही प्राणी धर्म की भावना को एवं मानवता धर्म की भावना को स्वयं में संजोये है, वहीं आज मानवाधिकार का प्रश्न पश्चिमी देशों से उद्घोषित हुआ है। यूरोप, अमेरिका, एशिया के अन्य महाद्वीप ही वे पाश्चात्य देश हैं जिन्होंने अनेक छोटे देशों को अपना उपनिवेश बनाकर शोषण किया था। पश्चिम की इन साम्राज्यवादी शक्तियों ने पिछली दो-तीन शताब्दियों से उपनिवेश बनाकर उनके आधारभूत अधिकारों का हनन कर उन्हें मानवाधिकारों से वंचित भी किया था। लेकिन प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् (1914-1981) जब इनकी स्वतन्त्रता पर खतरा मंडराने लगा तो ये मानव स्वतन्त्रता तथा मानव अधिकारों की चर्चा करने लगे।

जैन धर्म अर्थात् प्राणी धर्म मानवाधिकार का ही पर्याय है। जैनधर्म का प्रत्येक सिद्धान्त, प्रत्येक वाक्य प्राणी-हित की बात करता है। जैनागम आचरण की पवित्रता तथा श्रेष्ठ कर्तव्य निर्वाह की शिक्षा भी देता है। मध्यकालीन मानव कर्तव्योंकी छायामें जीता था लेकिन आज का मानव मुख्य रूपसे मानव अधिकारों की छाया में जीता है। मानव कर्तव्यों को तो विस्मृत कर रहा है और अधिकारों की रट लगाये हुए है। अगर प्रत्येक मनुष्य अपने कर्तव्यों का निर्वाह उचित प्रकार से करता है तो अन्य व्यक्ति को अधिकार स्वत: ही मिल जायेंगे। यदि प्रत्येक व्यक्ति अहिंसादि पंचव्रतों का एकदेश भी पालन करे तो अन्य जन को कदापि कष्ट नहीं होगा और इस रूपमें उसे जीने का अधिकार स्वत: ही मिल जायेगा।

जैन धर्म अहिंसादि पाँच व्रतों के पालन से शोषण के विरुद्ध भी आवाज उठाये हुए है। जैन दर्शन की मान्यतानुसार अहिंसा का मूलाधार आत्म साम्य है। प्रत्येक आत्मा चाहे वह सूक्ष्म हो या स्थूल, स्थावर हो या त्रस, तात्त्विक दृष्टि से समान है। अगर प्रत्येक मनुष्य दूसरे को स्वयं के समान ही समझेगा तथा यह मानेगा कि जिस प्रकार वह अपने जीवन की रक्षा व विकास चाहता है उसी प्रकार अन्य प्राणी भी चाहते हैं तो इस दार्शनिक तथ्यको समझने के बाद वह अन्य का शोषण नहीं करेगा तथा इस प्रकार मानव अधिकारों का संरक्षण व संवर्धन करेगा। अहिंसा व्रत का पालन कर **बाल**

शोषण भी समाप्त किया जा सकता है। अपने आश्रितों को पीड़ा पहुँचाना तथा क्षमता से अधिक कार्य लेना अहिंसाव्रत का पीड़न नामक अतिचार है। अगर इस अतिचार का त्यागकर दिया जाये तो **बेगार प्रथा** तथा **बाल शोषण** स्वत: ही समाप्त हो जायेगा। अत: प्रतीत होता है कि जैनाचार्यों ने भविष्यकी कल्पना पहले ही अपने ग्रन्थोंमें करली थी, जिससे कालान्तर में संविधान ने अपनी मोहर से संवैधानिक मान्यता प्रदान कर दी।

अपरिग्रहव्रत का पालन कर आर्थिक शोषण समाप्त किया जा सकता है। जैन धर्म का मानना है कि जितनी आवश्यकता है उतनी ही वस्तु या स्थान का संग्रह करना चाहिए तथा जितनी वस्तु का उपभोग आवश्यक है उतना ही ग्रहण करना चाहिए। अगर प्रत्येक मनुष्य अपनी आवश्यकता के अनुरूप ही वस्तु का उपभोग करता है तो शेष वस्तु दूसरों के उपभोगके काम आ सकती है और इस प्रकार सम्पत्तिका जो एक जगह पूंजीकरण हो जाता है वह सम्पत्ति समाज की वस्तु बन जायेगी तथा सभी उसका समान रूप से लाभ ले सकेंगे। इस तरह से एक प्रमुख समस्या, पूंजीवाद का भी हल निकाला जा सकता है तथा आर्थिक शोषण को समाप्त किया जा सकता है।

मानवाधिकार आयोग का एक प्रमुख कार्य **यौन शोषण को समाप्त करना** भी रहा है। महिलाओं की सुरक्षा व संवर्धन भी मानवाधिकार आयोग का कर्त्तव्य है। भारतीय संस्कृति में जहाँ नारी सदैव पूजनीय रही है वहाँ वर्तमान में नारी की सुरक्षा पर प्रश्नचिह्न लग गया है। सरकार इस ओर विशेष कदम उठा रही है। **समाज में फैली दहेज हत्या, बलात्कार, यौन शोषण तथा वेश्यावृत्ति इन सबका बहिष्कार ही मानवाधिकार आयोग का उद्देश्य है।** जैन धर्म और दर्शन तो प्रारम्भ से ही नारी को श्रद्धा का पात्र मानता आया है। यहाँ नारी तीर्थङ्कर जननी के रूप में सदैव पूजनीय रही है। इसके अतिरिक्त जैनाचार्यों ने नारी सम्मान की रक्षा के लिये ब्रह्मचर्य जैसा व्रत प्रदान किया। यौनाचार का त्याग तथा स्वदारा सन्तोष ही ब्रह्मचर्य व्रत है। विवाह के बाद व्यक्ति अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य सभी स्त्रियों को माता, बहिन तथा पुत्री की तरह समझे तो नारी सुरक्षित रह सकती है। अगर इस व्रत का पालन समाज का प्रत्येक व्यक्ति करे तो नारी शोषण या यौन शोषण एक भूतकालिक घटना बनकर ही रह जाये और एक स्वच्छ शुद्ध व पवित्र समाज का निर्माण हो सके। अत: जिस ब्रह्मचर्य व्रत का उल्लेख जैन आचार्य अपने धर्मग्रन्थों में सदियों पूर्व कर चुके थे उसी व्रत का मानवाधिकार आयोग पालन कर नारी की अस्मिता की सुरक्षा कर रहा है।

नारी शिक्षा भी मानवाधिकार का एक प्रमुख उद्देश्य है। वर्तमान में हर सम्भव प्रयास किया जा रहा है कि नारी हर क्षेत्र में आगे रहे। जैन साहित्य तो सदैव से ही

नारी शिक्षा का पुरजोर समर्थक रहा है। जैन साहित्य-आदिपुराण, उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण आदिके अनुशीलन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन नारी न केवल पाककला, चित्रकला, संगीतकला आदिमें निपुण एवं पांरगत थी अपितु आयुर्वेद, धनुर्विद्या आदि का भी उसे ज्ञान हुआ करता था। रानी कैकेयी युद्ध विद्या में पारंगत थी यही कारण था कि वह राजा दशरथ के साथ युद्ध भूमि में गई थी। अत: नारी शिक्षा का जैन साहित्य तथा धर्म उपदेश देता रहा है।

जातिवाद तथा साम्प्रदायिकता का विरोध भी मानवाधिकार कर रहा है। इस क्षेत्र में भी जैन धर्म का योगदान अद्वितीय रहा है। जैन न तो कोई जाति है और न ही सम्प्रदाय है। जिनेन्द्र देव के सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करने वाला प्रत्येक व्यक्ति जैन है। जैन मान्यतानुसार जन्म से न तो कोई ब्राह्मण है और न क्षत्रिय, सभी अपने कर्मों से अपने वर्ण, अपनी जाति का निश्चय करते हैं अत: जातिवाद की तो कोई समस्या होनी ही नहीं चाहिए। इसलिये जाति तथा सम्प्रदाय का निर्माण जन्म से नहीं कर्म से है और जैन धर्म तो कर्म की सत्ता को ही स्वीकार करता है। जो जैसा कर्म करता है उसे उसी के अनुसार नाम, जाति, गोत्र आदि की प्राप्ति होती है।

स्वतन्त्रता के अधिकार पर जैन दर्शन के कर्म सिद्धान्त का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। जैन धर्म का मानना है कि प्रत्येक मानव कर्म करने के लिए स्वतन्त्र है तथा यह मानव पर निर्भर करता है कि वह शुभ कर्म करके पुण्यार्जन करता है या पाप कर्म कर पापार्जन।

पर्यावरण सुरक्षा तथा सन्तुलन भी मानवाधिकार का एक प्रमुख प्रयोजन रहा है। सामाजिक अधिकार के अन्तर्गत स्वच्छ, शुद्ध तथा पवित्र समाज में रहने का प्रत्येक मानव का अधिकार है। जैन दर्शन पर्यावरण सन्तुलन की ओर विशेष ध्यान देता है। जैन दर्शनानुसार न केवल श्रमण अपितु श्रावक भी स्वच्छ वातावरण में रहना पसन्द करते हैं। जैन दर्शन जल, वायु, वनस्पति, पृथ्वी तथा अग्नि में जीव की सत्ता मानता है तथा अहिंसा व्रत के अन्तर्गत श्रमण को पूर्णरूप से तथा श्रावक को एक देश रूप से इनकी हिंसा का निषेध करता है। अगर हम वनस्पति तथा अन्य सभी में जीव तत्त्व मानकर उनकी हिंसा न करें तो पर्यावरण में इन प्राकृतिक तत्त्वों की कमी नहीं होगी तथा अनावृष्टि, अल्पवृष्टि, भूकम्प इत्यादि प्राकृतिक आपदाओं से मानव को सुरक्षित रखा जा सकता है।

पाश्चात्य देश मानव अधिकारों की बात तो करते हैं लेकिन पुरी तरह वे पालन नहीं करते। इसके अतिरिक्त वर्तमान में सबसे ज्यादा पर्यावरण प्रदूषित इनकी औद्योगिक नीतियोंके कारण ही हो रहा है। हाथ से होने वाले कार्यों का स्थान मशीनों ने ले लिया

इससे एक तरफ तो मानव की आजीविका के साधन छीन लिये इससे बेरोजगारी फैल रही है तथा दूसरी तरफ पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है जिसकी मार से मानव का साँस लेना भी दूभर होता जा रहा है। इसलिए प्रकृति के साथ समन्वय व सामंजस्य होना जरूरी है।

जैन धर्म के अहिंसा अणुव्रत को मानव अधिकार का प्रथम सोपान कहा जा सकता है। मांसाहार का सेवन करने वाले पाश्चात्य देश मानवाधिकार की बात करते हैं, ये बात गले नहीं उतरती है। सिर्फ राजनैतिक प्रपंच तथा स्वयं को संसार में सिरमौर बनाने के लिए मानवाधिकार का डंका तो पीटते हैं लेकिन, स्वयं उनसे कोई सरोकार नहीं करते। इन पाश्चात्य देशों ने ही छोटे-छोटे देशों को अपने उपनिवेश बनाकर दास प्रथा का प्रारम्भ किया था और आज ये ही देश बाल श्रमिकों द्वारा बनाये गये सामान का बहिष्कार कर मानवाधिकार की बात करते हैं। जब तक बड़े राष्ट्र तथा कथित मानवाधिकार भाग्यविधाता मांस भक्षण, शिकार, मद्यपान, व्यभिचार आदि विकृतियोंसे अपनी और अपने देश की रक्षा नहीं करते तब तक उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करना मानवाधिकार के हनन की बात करना उचित नहीं है। हिंसादि पापों में निमग्न व्यक्ति दूसरों के दु:खों के निवारण की सच्ची बात नहीं सोच पाता है। अत: मानव अधिकारों की सुरक्षा तथा सम्वर्धन के लिए अहिंसा व्रत का पालन अनिवार्य है।

मानवाधिकार की चर्चा के साथ अहिंसा और जीवदया की भावना भी सामने आती है। जैन धर्म आत्मतुल्यवाद का प्ररूपक है। आदिनाथ के काल से इसमें संयम, आचरण, करुणा, जीवदया पर विशेष बल दिया गया है। युवाचार्य ने अपनी पुस्तक ''जैन धर्म : अर्हत् और अर्हतायें'' में एक स्थान पर लिखा है कि मानवाधिकार विश्व संगठन यू०एन०ओ० के लिए एक नई सोच हो सकती है लेकिन भ० महावीर की शिक्षाओं से भी माने तो यह सिद्धान्त ढाई हजार वर्ष पुराना है। जिसमें मानवाधिकार की ये सब बातें पूर्ण रूप से विद्यमान है।

भगवान महावीर ने स्थावर-काय की जो बात कही है वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। स्थावर जगत् के साथ ''वसुधैव कुटम्बकम्'' (एकात्मता) की अनुभूति होनी चाहिये। जैसा हमारा अस्तित्त्व है। जैसे-जैसे वह अनुभूति स्पष्ट और प्रखर होती चली जाती है वैसे-वैसे हमारी जागरूकता बढ़ती चली जाती है। जागरूक चर्या का आधार है- पूरे प्राणी जगतके साथ एकात्मकता। केवल प्राणी जगत के साथ ही नहीं, पुद्गल जगत् के साथ भी एक विशेष प्रकार की अनुभूति होनी चाहिए। एक निर्जीव वस्तु को भी बिना मतलब इधर-उधर रखना उचित नहीं है जीव का असंयम होता है तो अजीव का भी असंयम होता है। दूसरे शब्दों में जल, वायु, अग्नि, वनस्पति आदि को भी प्रदुषित

न करें और इनको अंहकार रहित समभाव व विवेकपूर्ण संयम से उपयोग में लेवें। भगवान महावीर ने जो जिया, उसका आधार सूत्र है - ''दूसरे के अस्तित्व की स्वीकृति'' अर्थात् वसुधैव कुटुम्बकम्।

जैन धर्म के मानवमूल्य को स्पष्ट करते हुए उमा स्वामी ने अपने ''तत्त्वार्थ सूत्र'' में कहा है - ''परस्परोपग्रहो जीवानाम्'' अर्थात् जीवन एक दूसरे के सहयोग पर एक दूसरे के उपकार-भाव पर निर्भर है। यहाँ ''जीओ और जीने दो'' की भावना तथा क्षमा की भावना विद्यमान है। यही सह-अस्तित्व (Co-existence) है। हम जीवित रहना चाहते हैं तो संसार के अन्य जीव, पदार्थ भी जीवित तथा सुरक्षित रहना चाहते हैं ''पंचशील'' का सिद्धान्त भी सह-अस्तित्व पर आधारित है। सभी सुखी रहना चाहते हैं, दुखी होना कोई भी नहीं चाहता। अत: निर्ग्रन्थ प्राणवध की वर्जना करते हैं। जैन श्रावकों को कम से कम अपने अंहकार व मायाचार से बचें तथा अपने तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित उपदेशों का पालन करें।

जैन धर्म के सिद्धान्त मानवाधिकार व मानव जीवन के आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए वे संजीवनी का कार्य कर सकते हैं, व शर्त की हम उनका उचित ढंग से पालन करें। महावीर संदेश आभा से परिपूर्ण है तथा आत्म-विश्वास आत्मानुशासन एवं आत्म विशुद्धि द्वारा आत्माकी आंतरिक शक्तियों एवं असीम संभावनाओं को उजागर करने के साधन हैं। इनको पालन करने से ही मानवाधिकार हनन पर स्वत: रोक लगेगी।

मानवाधिकार आयोग का एक उद्देश्य **सर्वजन का कल्याण** है। भारतीय संविधान के अनुसार केवल धर्म, जाति, वर्ण, लिंग अथवा जन्म स्थान इनमें से किसी एक अथवा एक से अधिक के आधार पर नागरिकों के विरुद्ध राज्य द्वारा कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता है। इस अवधारणा को जैनाचार्यों ने जैन ग्रंथों में सर्वोदय तीर्थ की संज्ञा दी है। सबका उदय ही सर्वोदय है, अर्थात् जिसमें सभी प्राणियों को अपनी उन्नति के समान अवसर मिलें व प्रत्येक व्यक्ति सर्वोच्च पद प्राप्त कर सबको पूर्ण सुखी और ज्ञानी होने का पूर्ण अधिकार प्राप्त करता है, वही सर्वोदय सिद्धान्त है।

जनता चाहती है कि सरकार व्यक्ति के मानवाधिकार हनन को रोके। सरकार इसके लिए प्रयत्नशील भी है परन्तु अभी बहुत कुछ करना है जैसे-बाल विवाह, भ्रूण हत्या, स्त्रियों का बेचान, बलात्कार व कुरुतियों को दूर करने आदि पर कार्य किया जाना व उनका हनन रोकना शेष है।

मानव अधिकारों की लड़ाई सैद्धान्तिक से अधिक व्यवहारिक है। जैन धर्म में सैद्धान्तिक व्यवस्था तो बहुत अधिक संवेदनशील तथा अच्छे रूप में की गयी है जो हमें शास्त्र-ग्रन्थोंमें प्राप्त होती है परन्तु उसका व्यवहारिक रूप उतना देखने को मिलता नहीं है। सरकारों से कानूनों का बनवाना उतना संघर्षपूर्ण नहीं है जितना उनसे लागू

करवाना तथा उससे भी अधिक एक व्यक्ति द्वारा अपने परिवार एवं समाज से अपना अधिकार मांगना और स्वयं को उसके योग्य बनाना। वस्तुत: हमारे शिक्षा पाठ्यक्रमों के द्वारा, हमारे साहित्य लेखन एवं पत्रकारिता तथा जनसंचार के माध्यमों के द्वारा इस सम्बन्ध में व्यापक प्रचार-प्रसार कर प्रशासन तथा जनता दोनों की संवेदनाओं को उभारना चाहिये एवं सरकारी तथा गैर सरकारी संगठों को मिल-जुलकर इसे 21वीं शताब्दी की मानव संस्कृति का प्रमुख लक्षण बनाना चाहिये। हालांकि भारतीय धर्मों ने इसका सही चित्रण किया है पर धार्मिक पण्डितों के पास इसे व्यवहार में लागू करने के कोई साधन नहीं थे परन्तु उन्होंने नैतिकता का जामा पहनाकर उसको जन-जन तक पहुँचाने का, समझाने का प्रयास किया था। भारतीय समाज ने लम्बे सामन्ती एवं औपनिवेशिक काल के दौरान विषमता एवं शोषण की प्रक्रिया के रहते जिस मानवी विद्रूपता को व्यवस्थाबद्ध किया है अब उसे ''मानवीय'' बनाने के लिए आज भारतीयों में मानवाधिकारों की चेतना प्रबल करने की आवश्यकता है ताकि भारतीय समाज में गुलामी और गैर-बराबरी इतिहास के कोढ से मुक्त हो और मानवीय समता एवं गरिमा आधारित समाज पुनस्सृजन शीघ्रतर हो।

यहाँ यह कहना उचित समझता हूँ कि जहाँ कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में इस दिशा में जो प्रयत्न किये गये हैं वे बहुत सीमित हैं। यहाँ जिस तरह की विपन्नता और विषमता है उनके रहते मानवाधिकार का प्रश्न बार-बार उठेगा। यह इसलिये भी उठता रहेगा क्योंकि यहाँ के प्रशासन-तंत्र में मानवाधिकारों को लेकर अपेक्षित संवेदनशीलता नहीं है। इसीलिए भारत के राजनीतिक दलों, नोकरशाहों, न्यायविदां, बुद्धिजीवियों एवं आम नागरिकों को व्यक्तिगत स्तर पर तथा संगठनों के स्तर पर मानवाधिकारों से सम्बन्धित मुद्दे को उठाते रहना चाहिये और इस दिशा में सकारात्मक कार्य करते रहना चाहिये।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि जैन शासन सबको पुरुषार्थ और आत्मनिर्भरता की पवित्र शिक्षा देता हुआ समझाता है कि यदि तुमने दूसरों के साथ न्याय तथा उचित व्यवहार किया तो इस पुण्याचरण से तुम्हें विशेष शान्ति तथा आनन्द प्राप्त होगा। यदि तुमने दूसरों के न्यायोचित स्वत्वों का अपहरण किया, प्रभुता के मद में आकर असमर्थों को पदाक्रान्त किया, तो तुम्हारा आगामी जीवन विपत्ति की घटा से घिरा हुआ रहेगा। इस आत्मनिर्भरता की शिक्षा का प्रचार होना आवश्यक भी है तथा मानवाधिकार आयोग इस हेतु प्रयासरत भी है। ज्ञानवान मानव का कर्त्तव्य है कि वह अपने जीवनकी चिन्तना के साथ असमर्थ तथा अज्ञानी बन्धुओं को बिना किसी भेदभाव के समुन्नत करने का प्रयत्न करे। आज जो पश्चिम में धन की पूजा हो रही है उसके स्थान में वहाँ करुणा, सत्य, परिमिति अपरिग्रहवृत्ति, अचौर्य, ब्रह्मचर्य की आराधना होनी चाहिए। विद्यादान जैसे देने से बढ़ता है इसे लेने वाला और देने वाला आनन्द का अनुभव करता है इसी

प्रकार करुणा भी प्रेम का प्रसाद है। करुणा की छाया में सब जीव आनन्दित होते हैं।

जहाँ परस्पर सद्भावना, सहानुभूति, सच्चा प्रेम का निर्झर न बहे वहाँ तो एक प्रकार से नरक का राज्य समझना चाहिए। समाज या राष्ट्र के कर्णधारों का कर्तव्य है कि वह जनता की अधोमुखी वृत्तियों पर नियन्त्रण रखें और उसमें सद्भावनाओं का प्रकाश फैलावें। अपने आश्रितजनों को कम से कम जीवन की आवश्यक सामग्री अवश्य प्राप्त करानी चाहिए। सच्चा आनन्द केवल अपना पेट भरनेमें नहीं है बल्कि अपने आश्रित सभी लोग सुखी हों और उन्हें कोई कष्ट नहीं हो, ऐसी स्थिति उत्पन्न करने में है। जैन शास्त्रकारों ने कहा है कि जो गृहस्थ दान नहीं देता है उसका घर श्मशान तुल्य है। यदि व्यक्तित: त्याग का तत्त्व धनिकों के अन्त:करण में प्रतिष्ठित हो जाये तो अर्थवान और अर्थविहीनों का संघर्ष दूर होकर मधुर सम्बन्धों की स्थापना हो सकती है जिससे मानव अधिकारों को बल भी मिलता है। अत: आवश्यकता है जीवन उत्सर्ग करने वाले सच्चे, सहृदय, विचारशील सत्पुरुषों की। पवित्र जीवन के प्रभाव से पशु जगत में भी नैसर्गिक क्रूरता आदि नहीं रहने पाती तब तो यहाँ मनुष्य के उद्धार की बात है तो असंभव नहीं कही जा सकती। हालांकि कल्याणकारी सरकार अपने नागरिकों के कल्याण के विषय में संवेदनशील रहती है फिर भी इच्छा शक्ति के अभाव में वह पूर्णत: इसमें सफलीभुत नहीं हो पायी। इसके लिए शिक्षा उपलब्ध कराने के साथ रोजगार देने और सामाजिक कुरुतियों को दूर कर हमें अपनी मानसिकता को बदलना होगा इसके अभाव में तब तक इसका क्रियान्वयन किया जाना मुश्किल होगा। इसके अलावा प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह मनमानी न कर जांच परख कर पूर्ण विवेक के साथ मानवीय सिद्धान्तों का पालन करें तभी हम मानवाधिकार का हनन रोकने में सफल होंगे। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए हम अपनी अन्तरात्मा से कार्य करेंगे तो हम स्वत: ही मानव मूल्यों के हनन को रोक सकेंगे।

मेरा अपना मानना है कि मानवाधिकारों का प्रश्न किसी एक निश्चित मापदण्ड के द्वारा स्थापित नहीं किया जाना चाहिए। उसे एक देश, क्षेत्र विशेष, विचार एवं व्यक्ति विशेष की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही विचार किया जाना चाहिए। मानवाधिकार के मसले को केवल व्यापारिक अनुकूल स्वार्थों एवं कुटनीतिक हथकण्डों के रूप में भी नहीं देखना चाहिए। मानवाधिकार के प्रश्नों को मानव-विकास की आधारभूत प्रक्रिया को गतिशील बनाने की दृष्टि से देखना चाहिये ताकि विकास के अवसर एवं मानवाधिकारों को एक-दूसरे से जोड़कर देखा जा सके। ❑ ❑

* अध्यक्ष, राजस्थान राज्य मानवाधिकार आयोग, जयपुर, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति, मद्रास व कर्नाटक हाईकोर्ट। आर-3, तिलक मार्ग, सी-स्कीम, जयपुर-302 005

क्या आप चाहते हैं कि आपके परिवाद/शिकायत पर आयोग द्वारा शीघ्र प्रभावी कार्यवाही हो?

यदि हाँ, तो कृपया अपने परिवाद/शिकायत में यथासंभव निम्न सूचना अवश्य अंकित करें :-

(क) पीड़ित व्यक्ति का नाम, पिता/पति का नाम, जाति, निवास का पता/गाँव/शहर, डाकघर, पुलिस थाना, जिले सहित।

(ख) जिस व्यक्ति/अधिकारी/कार्यालय के विरुद्ध शिकायत है, उसका पूरा विवरण।

(ग) शिकायत/घटना/उत्पीड़न का पूरा विवरण (घटना, स्थान, तारीख, महीना, वर्ष सहित।

(घ) घटना की पुष्टि करने वाले साक्षियों के नाम-पते, यदि ज्ञात हो तो।

(ङ) घटना की पुष्टि करने में दस्तावेजी सबूत, यदि कोई हो तो।

(च) यदि किसी अन्य अधिकारी/कार्यालय/मंत्रालय को शिकायत भेजी हो तो उसका नाम एवं उस पर यदि कोई कार्यवाही हुई हो तो उसका विवरण।

(छ) क्या आपने पूर्व में इस आयोग या राष्ट्रीय आयोग में इस विषय में कोई शिकायत की है? यदि हाँ, तो उसका विवरण एवं परिणाम।

(ज) क्या इस मामले में किसी फौजदारी/दीवानी/राजस्व अदालत में या विभागीय कोई कार्यवाही हुई या लम्बित हैं? हाँ, तो उसका विवरण।

नोट : कृपया परिवाद/शिकायत पर हस्ताक्षर/अगुष्ठ चिन्ह लगाना नहीं भूलें।

परिवाद/शिकायत अध्यक्ष/सचिव, राजस्थान मानवाधिकार आयोग, जयपुर के पते पर भिजवाएं।

आयोग का संगठनात्मक संरचना

1.	न्यायमूर्ति एन.के. जैन	अध्यक्ष
2.	न्यायमूर्ति जगतसिंह	सदस्य
3.	श्री धर्मसिंह मीणा	सदस्य
4.	श्री पुखराज सिरवी	सदस्य
	श्री गिरीराज सिंह	सचिव

आयोग का प्रमुख कार्यकारी अधिकारी आयोग का सचिव है। आयोग के अन्वेषण कार्य के लिये महानिरीक्षक स्तर का एक पुलिस अधिकारी नियुक्त है।

सम्पर्क सूत्र :

राजस्थान राज्य मानवाधिकार आयोग, जयपुर

टेलीफोन : 0141-2227868 (अध्यक्ष)

2227565 (सचिव), 2227738 (फैक्स)

Website : www.rshrc.nic.in

Human Rights - Manav Adhikar & Jain Dharm
Legal Literacy & Awareness Series - 4   2/2006

मानवाधिकार और जैन धर्म

न्यायमूर्ति एन.के. जैन
चैयरपर्सन

राजस्थान राज्य मानवाधिकार आयोग
एस.एस.ओ. बिल्डिंग
शासन सचिवालय, जयपुर

मानवाधिकार और जैन धर्म

न्यायमूर्ति एन.के. जैन
चैयरपर्सन

राजस्थान राज्य मानवाधिकार आयोग
एस.एस.ओ. बिल्डिंग
शासन सचिवालय, जयपुर